Chapter- 7

सप्तम अध्याय

मूल्यांकन एवं उपसंहार

नवगीत के साहित्य की उच्चस्थ कीर्ति प्रदान करने में जिन समर्थ सर्जकों की विशिष्ट भूमिका रही है, उनमें देवेन्द्र शर्मा इन्द्र का शीर्षस्थ स्थान है, प्रस्तुत प्रबन्ध में विविध दृष्टियों से हम इन्द्र जी के नवगीतों को उलट-पुलट आए हैं। उनके गीत, गजलों और दोहों को भी निरखा-परखा है, किंतु उनकी अपनी निजी पहचान नवगीतों में ही उभर कर आई है, हम यह भी कह सकते हैं कि इन्द्र जी के नवगीतों में एक नया बॉकपन, एक नया मिजाज और एक नयी अदाँ है। उन्होंने नवगीतों की नव्यता को बड़ी सार्थकता के साथ अभिव्यक्त किया है। उनका हर नवगीत एक निश्चित कथ्य और परिवेश को व्यक्त करता रहा है। इसीलिए उन्हें नवगीत का भीष्म-पितामह भी कहा गया है।

इस प्रबन्ध के माध्यम से यह स्पष्ट कर दिया गया है कि गीत और नवगीत की जाति एवं वर्ण भले एक ही हो, किंतु कथ्य और प्रस्तुति के संदर्भ में गीत और नवगीत में जमीन आसमान का अन्तर है। गीत जहाँ एक ओर आकाश में अवस्थित रहकर रंगीन कल्पनाओं के वायवी पंखों पर उड़ान भरता है, वहीं नवगीत जमीन पर खड़ा होकर जीवन की हर धड़कन का साक्षी बनता है और बदलते परिवेश और सामाजिक सरोकारों का खुलासा करता हुआ व्यष्टि से समष्टि की ओर अग्रसर हुआ है।

बीसवीं शताब्दी के सातवें दशक से ही काव्य सृजन के आयाम बदलने लगे थे, स्वातंत्र्योत्तर काल में कमजोर राजनीति के लड़खड़ाते निर्णय, सामाजिक परिवेश के आमूलचूल परिवर्तन तथा साहित्य में संलग्न असंतुलन और अविवेक का साहित्य में आरोपण देखा जा सकता है। पाश्चात्य व्यावसायिक नजरिया का वैश्विक प्रकार एवं बाजारवाद की स्थूल अविधारणाएँ साहित्य के वृत्त निर्धारित कर रहे थे। भूमण्डलीकरण की सम्मोहित करने वाली स्वार्थी दृष्टि से भले ही विश्व को एक गाँव के रूप में परिवर्तित कर दिया हो, किंतु व्यक्ति की सोच अपनी-अपनी जमीनों से हट नहीं पाई है। अपनी-अपनी प्रकृति, अपनी-अपनी पीड़ाएँ तथा अपनी-अपनी हँसी-खुशी से क्षणांश भी अलग नहीं हो पायी है।

इस देश की यह मानसिक संकुचितता रही है कि वह प्रगति के पथ पाश्चात्य परिवेश और सुदूर सागर पार की संस्कृति में स्वीकारता है। भारतीय वाङ्मय की ओजस धारा में भी यही पाश्चात्य दृष्टि का आरोपण सम्पूर्ण देशी साहित्य को आत्महत्या करने के लिए विवश कर देता है। इस धरती का सर्जक सागर उलाँघ जाता है। हवाओं में वितान फोड़ डालता है। और सुदूर पश्चिम की चकाचौध के आगे घुटने टेक कर आत्म-समर्पण कर देता है। या स्वयं को अभिजात या कुलीन कहलाने के व्यामोह में घर से बाहर के

आरोपित सम्मोहन में स्वयं की अस्मिता ही विस्मृत कर देता है। नयी कविता की जमीन इसी रुग्ण मानसिकता की देन है।

आज जहाँ एक ओर मानव मूल्यों में आमूलचूल बदलाव आया है, वहाँ साहित्य के मानदण्ड भी बदले हैं। यह बदलाव संचार माध्यमों की विकसित तकनीकी से भी आया है। सारा विश्व इस संचार व्यवस्था से एक गाँव के रूप में सिमट आया है। पाश्चात्य भोगवादी संस्कृति में भी इस सम्पर्क साहचर्य के द्वारा बदलाव देखा जा सकता है। बाजारवाद की व्यावसायिक अर्थवत्ता ने साहित्य में भी हस्तक्षेप किया है। व्यक्ति मात्र आत्मजीवी न रहकर समष्टिगत परिदृश्यों में व्याप्त हो गया है। भारतीय रचनाकारों में सामने पाश्चात्य सोच अभिजातीय मानदण्डों का प्रतीक रही है, किंतु इस अंधानुकरण ने भारतीय वाङ्मय को कोई ठोस जमीन या पहचान नहीं दी, उलटे उसके अपने स्थापन और मूल्य ही विघटित हुए हैं, हिन्दी के गीतों में भी यह प्रभाव देखा जा सकता है। किन्तु नयी कविता, सामयिक कविता या आधुनिक कविता के अपेक्षा गीत या नवगीत कम व्यवधानित हुआ है, कम क्षरित हुआ है।

नयी कविताने भाषा की अभिजातता तथा प्रस्तुति ज्ञी वैचित्र्य तो अवश्य प्रस्तुत किया है, सोच की गहन अर्थवत्ताएँ भी स्वीकारीं किंतु कविता का भारतीयकरण निःशेष हो गया। कहीं से भी यह नहीं लगता कि यह इस देश का उत्पादन या इस राष्ट्र की पहचान है। लगता है जैसे संयुक्त परिवार के बीच कोई वरिष्ठ मुहिमान आया है, जिसके आगे बच्चे चुप हैं, बड़े बूढ़े मौन हैं, केवल एक आदमी बोल रहा है, एक आदमी समझ रहा है और एक आदमी ही सोच रहा है। पूरा परिवार इस संवाद में दरकिनार है। वह अकेला एक आदमी व्यवस्था बना रहा है, व्यवस्था चला रहा है तथा व्यवस्था बदल भी रहा है, बाकी के लोग व्यवस्था को मूक स्वीकृति दे रहे हैं। भाषिक स्वीकृतियाँ की अनुपस्थिति है। प्रगीत या अछान्दस इस अभियान ने देश की गीतात्मक या रागात्मक पहचान को समाप्त करने का भरपूर यत्न किया। आयातित आडम्बरों को इस तरह जनमानस पर आरोपित किया कि भले चंगे समझदार रचनाकारों के भी हिलाने के लिए पूँछ निकल आई। चाटुकार चारण और भाट उनकी प्रशस्तियाँ गाने लगे। उन्हें मंचस्थ किया गया, उच्चस्थ शिखरों पर आरोपित भी किया गया।

इन तमाम अभिजातीय बदलावों को भारतीय जन-मानस ने सिरे से खारिज कर दिया। जनाग्रही रुझान से संलग्न गीत को जब दरकिनार करके हासिये पर फेंका जाने लगा तो कविता की संज्ञा से लोकाग्रही रुझान ही अलग हो गया, पाठको ने बहुत कुछ सोचा

और समझा भी, अनुभव भी किया और बहुत कुछ जिया भी, फिर बाद में आत्मविमर्श के साथ सर्वानुमति से बेरागी, अछान्दस अगीता, बेतुकी कविता को जनमंच से सम्पूर्ण रुप में अपदस्थ कर दिया। इस अभियान में गीतों और नवगीतों की बहुत बड़ी रसाग्रही जमात सामने खड़ी थी। गीत मंच पर भी रहा और गली गलियारों में भी, घर में रहा और विचार गोष्ठियों में भी, पाठ्यक्रमों में भी रहा, पत्र-पत्रिकाओं में भी। इस देश के जन-मानस ने गीत-राग को अपने परिवेश से या अपनी प्रकृति से अलग नहीं माना।

शंभुनाथ सिंह ने नवगीतों के मंच को एक व्यवस्था दी, एक अनुशासन और एक जमीन भी दी। 'नवगीत अर्द्धशती' से लेकर नवगीत दशकों की श्रृंखला ने अनेक सार्थक हस्ताक्षरों को प्रामाणित किया और नईपीढ़ी के लिए एक तयशुदा किलेवन्दी तैयार कर दी। इनमें से भी कुछ हस्ताक्षर काल के गाल में अदृश्य भी हो गए किंतु अन्य रचनाकारों ने इस दिशा में अपनी विशिष्ट कारियित्री प्रतिभा का निदर्शन भी किया, उनकी यह रागमाला दूर तक अग्रसरित भी हुई।

शंभुनाथ सिंह के साथ इस यात्रा में आजकल अनेकानेक वरिष्ठ रचनाकार तथा समझदार समीक्षक एवं विद्वान मीमांसक भी सामने आए हैं। स्थापित नवगीतकारों ने विशेष उल्लेखनीय हस्ताक्षरों में गण्य हैं - शंभुनाथ सिंह, वीरेन्द्र मिश्र, उमाकांत मालवीय, रवीन्द्र भ्रमर, नईम, रामदरश मिश्र, देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' अमरनाथ श्रीवास्तव, दया शंकर तिवारी, सत्यनारायण, शिव बहादुर सिंह भदौरिया, गुलाबसिंह, बुद्धिनाथ मिश्र, माहेश्वर तिवारी, कैलाश गौतम, कुमार रवीन्द्र, श्री कृष्ण तिवारी, सोमठाकुर, कुँअर बेचैन, किशन सरोज, महेश अनघ, शांति सुमन, अनूप अशेष, विनोद निगम, विद्यानन्दन राजीव, यश मालवीय, महाश्वेता चतुर्वेदी, रमेश गौतम, सुरेश गौतम, राजेन्द्र गौतम, मधुकर अस्थाना, भागवत दुबे, सतीश कौशिक, अश्वघोष, नचिकेता, रामानुज त्रिपाठी, श्रीकृष्ण शर्मा, शीलेन्द्र कुमार सिंह, दिनेश सिंह, वीरेन्द्र आस्तिक, मधुकर गौड़, ओम प्रकाश सिंह, निर्मल शुक्ल, नीलम श्रीवास्तव, राधेश्याम शर्मा, महेन्द्र नेह, उर्मिलेश, ओम प्रभाकर, विष्णुविराट, तारादत्त निर्विरोध प्रभृति का नवगीत प्रदान उल्लेखनीय रहा है। इससे इतर और भी अनेक नवगीत हस्ताक्षर हैं जो समय-समय पर लिखते रहे हैं, जिन्हें मैं स्मरण नहीं कर पा रही हूँ, या मेरी शोधयात्रा में उपलब्ध नहीं हो पाए हैं।

देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' इस सम्पूर्ण वृत्त के केन्द्रस्थ रहे हैं। पुरानी पीढ़ी से जुड़ाव और नई पीढ़ी का साहचर्य इनके गीतों में साथ-साथ मुखर हुआ है। गीत की मूल सौन्दर्यवादी

अभिचेतना भी इनमें सुरक्षित है और जमीन से जुड़ी यथार्थवादी अनुभूतियों को भी उन्होंने आत्मसात किया है।

देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' ने नवगीतों के सम्पूर्ण वृत्त को सामने रखकर जो गीत लिखे हैं, उनमें सम्पूर्ण रुप से परंपरा का निषेध या अतीत के विरोध में कोई पूर्वाग्रही सोच सामने नही रखी। नवगीत के विशिष्ट प्रयोगों में कथ्य की आधुनिकता, व्यंजना के नये क्षितिज, आधुनिक सोच और प्रस्तुति को नये आयाम देखे जा सकते हैं। उन्होंने इन नये आयामों में पुरावर्तित बिम्बों और प्रतीकों के भी साधकर ग्रहण किया है। अपनी बात जब वह गीतों में व्यक्त करते हैं तब सम्पूर्ण प्रतिमान उनके कथ्य के सहचर के रूप में सामने आते हैं। कवि की संकल्प धर्मिता उसके अजेय निर्धारण और विरल विचार उसे सबसे अलग प्रतिष्ठित करने में सफल हुए हैं। इस प्रकार की मानसिक दृढ़ता उन्होंने अनेक बार व्यक्त की है जैसे–

"जो कुछ हूँ, जैसा हूँ, प्रस्तुत हूँ
मौलिक हूँ, अनुकरण नहीं हूँ।
इस जीवित क्षण का मैं साक्षी हूँ
मैं कल का संस्मरण नहीं हूँ।।
भाषातीत भावों का स्पंदन हूँ
सूत्र–बद्ध व्याकरण नहीं हूँ।"[1]

इन पंक्तियों में कवि यह व्यक्त करता है कि वह किसी भी निश्चित प्राचीरों में बँधकर अपनी बात कहना पसंद नहीं करता। व्याकरण के अटल सिद्धान्तों और काव्यानुशासन के स्थापित नियमों में वह बँधना नहीं चाहता, वह जो कुछ भी सोचता है, उसे व्यक्त कर देता है, अपनी मौलिक पहचान बनाने के लिए कवि प्रत्येक निरूपित बंधनों को अस्वीकार कर देता है।

कवि देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' कहीं भी समझौतावादी होकर अपने निर्धारित मूल्यों से नहीं डिगते। एक नव गीत में वह कहते हैं–

"हर बार रण में शत्रु की जब छावनी
देती रही प्रतिकार की चेतावनी
कुंठित हुआ तब शस्त्र था
मैं युद्ध में हारा न था
जब आग जंगल में लगी, फैला धुआँ

पूछा कभी था व्यास ने
यह क्या हुआ
तब जम गया था ओस कण
टूटा हुआ पारा न था।''[2]

उनके नवगीतों में सौन्दर्यवादी अभिगम के अनंत विस्तार परिलक्षित होते हैं। संवेदनाओं की अतल गहराइयाँ प्रस्तुत होती हैं और विचारों के गम्भीर मन्तव्य सामने आते हैं। इन्द्र जी ने दमित, शोषित एवं सर्वहारा वर्ग का पक्ष लिया है, दूसरी और उन्होंने अभिजात वर्गीय परिवारों के सांस्कृतिक और सामाजिक परिवेश को भी व्याख्यायित किया है। कभी विशेष विचार-धारा के दायरे में बँधकर किसी राजनीतिक पार्टी का घोषणा पत्र मात्र बनकर नहीं रह गया। जहाँ भी वह सामाजिक सम्मान अधिकार का बात करते हैं, तो इसका अर्थ यह नहीं है कि वह साम्यवाद का प्रवक्ता बनकर सामने आया है। बल्कि उसके भावात्मक कथ्य मानवीय संवेदना की अतल गहराइयों से निकलकर प्रस्तुत हुए हैं। इसीलिए उनके नवगीतों में विचार की चिर-नव्यता सदैव अनुभव की जा सकती है। यही कारण है कि उनके गीतों में श्रृंगार भी है, वात्सल्य भी है, सम्बन्धों की सुगन्ध भी है और मन की गहरी संवेदनाओं के पुलकित-क्षण भी हैं। 'हम तुम' नवगीत में वह कहता है-

''हम कभी जुगनू हुए, बिजली हुए, बादल हुए,
तुम कभी झूमर हुए, नूपुर हुए, पायल हुए।।
दूर से
तुमने हमें
आवाज दी
ज्यों लचकती
शाख
फूलों से लदी
तुम कभी नरगिस हुए, चम्पक हुए, पाटल हुए।
हम कभी चुप्पी हुए, बंसी हुए, मादल हुए।''[3]

जहाँ एक ओर कवि गीत के सौन्दर्यवादी अभिगम से जुड़कर अपनी सुकमार भावनाओं को व्यक्त करता हुआ कहता है-

''गुलमोहर की छाँह में लेटी हुई

फिर नदी के पाँव में छाले पड़े।''[4]

तो दूसरी ओर जिन्दगी के मानदण्डों को व्यक्त करता हुआ यह कहता है–

''मरे कुत्ते की खजैली टाँग–जैसी
जिन्दगी को और कितने दिन घसीटें ?
जिस नयेपन पर
रहे हम वहस करते
हो चुका वह तो पुराना
आज जो आदर्श सिरजे हैं
उन्हें कल
भूल जायेगा जमाना
खाल हो जिस पर चढ़ी मुर्दा हिरन की
नयेपन का कब तलक वह ढोल पीटें ?''[5]

देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' नवगीतकारों में इसीलिए अपनी विशिष्ट पहचान दर्ज करा सके हैं क्योंकि उन्होंने किसी आरोपित आचार संहिता का अनुपालन करने का मन नहीं बनाया। उन्होंने जहाँ भी पौराणिक मिथकों के माध्यम से अपनी बात कही है, वहाँ भी उनके अभिनव प्रयोग लीक से हटकर हमारा ध्यान आकर्षित करते हैं, अपने इस अभिप्राय को व्यक्त करते हुए वह कहते हैं कि–

''एक विंध्याचल सतत ढोया
स्वेद–सिंचित थके कंधों पर
टाँग कर तूणीर–शर–शायक
आत्म–निर्वासित कबंधों पर
आँख में काँटे गुलाबों के
पीठ पत्थर से छिली होगी,
रेंगते संकल्प साँपों–से
विकल्पों की छोड़ कर केंचुल,
सामने सागर उमड़ता है
पार जाने को न कोई पुल,
तीर पर मन राम का अटका
दूर भटकी–मैथिली होगी।''

नवगीत में भाषा, शिल्प, कथ्य प्रस्तुति और विषय के संतुलित सम्पादन ही अपनी पूर्णता को व्यक्त करते हैं। कवि देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' ने इन सभी तथ्यों को अपने मौलिक निर्धारणों के साथ नवगीत में प्रयोग किया है। यही प्रयोगधर्मिता उनकी विशिष्ट पहचान बनकर उभरी है। जहाँ दूसरे नवगीतकारों ने अपने कथ्य को व्यक्त करने के लिए कुछ वीभत्स उपमानों का साहचर्य ग्रहण किया है, वहाँ इन्द्र जी इस दुर्गन्ध से दूर ही रहना चाह रहे हैं। गीतकार राजेन्द्र गौतम यहाँ कहते हैं–

''कीच भरी धसती आँखों–सी
टपक रही है खपरैले।''[6]

वहीं पर देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' इसी कथ्य को इस ढंग से कहेंगे–

''जब हुआ अयोध्या में,
राज्यारोहण
निर्वासित हुई जानकी
आँसू में हमने रोपी
रामायण
कलगी ज्यो हरे धान की।''

अपनी इस नवगीत संबंधी धारणा को व्यक्त करते हुए स्वयं इन्द्र जी कहते हैं – ''जहाँ तक नवगीत के मिजाज का प्रश्न है वह बहुत कुछ अपने रचनाकार के स्वभाव के द्वारा भी प्रभावित और परिचालित होता है। मैं पहले भी अनेक प्रसंगों में इस तथ्य की ओर संकेत करता रहा हूँ कि जिस प्रकार एक सही, परिपूर्ण और सामाजिक दृष्टि से उपादेय व्यक्ति के लिए 'आक्रामक' होने की अपेक्षा 'सहिष्णु' और 'उदात्त' होना अधिक वरेण्य होता है, उसी प्रकार वास्तविक और मुकम्मिल नवगीत भी अपने कथ्य में आक्रामक नहीं होता। वह व्यक्ति के भीतर सहिष्णु और उदात्तता, के संस्कार ही उत्पन्न करता है। कुछ लोग ऐसा भी मानते हैं कि 'प्रतिभा' स्वभावतः ही उद्धृत होती है – मुझे इसे मानते हुए संकोच होता है। सहिष्णुता गीत की 'प्रकृति' है, उदात्तता उसकी संस्कृति है और आक्रामकता को मैं गीत और नवगीत की 'विकृति' कहना पसन्द करुंगा। प्रकृति, विकृति और संस्कृति को हम 'थीसिस', 'एण्टीथीसिस' और 'सिंथीसिस' भी कह सकते हैं, आक्रमण करने वाले से वह व्यक्ति अवश्य ही बड़ा होता है जो कि उस आक्रमण को अपनी पसलियों पर झेलता है। इसलिए यह मानना है कि नवगीत का मिजाज सहिष्णुतापरक होता है, उचित ही है।''[7]

देवेन्द्र शर्मा इन्द्र इतने कुशल और प्रतिवान नवगीतकार हैं, उतने ही श्रेष्ठ नवगीत के वक्ता भी हैं। स्वयं के नवगीत संकलनों की भूमिका में उन्होंने अपने नवगीत संबंधी मत विस्तार से व्यक्त किये हैं तथा अन्याय दूसरे रचनाकारों की कृतियों की भूमिकाओं में भी उन्होंने अपने सार्थक और स्पष्ट मत प्रस्तुत किये हैं। यह तथ्य इस बात को प्रमाणित करता है कि 'इन्द्र' जी के नवगीत सही भाव-भूमि पर प्रतिष्ठित है।

देवेन्द्र शर्मा इन्द्र ने नवगीतों की परंपरा में अपने विशिष्ट प्रदान से जहाँ एक ओर इस विधा को समर्थ और सार्थक बनाया है वहीं दूसरी ओर कविता को सामान्य आदमी की भागीदारी को भी अनिवार्यता के साथ ग्रहण किया है। वे मानवीय मूल्यों के अप्रतिम मेधावी गीतकार हैं, जिन्होंने अनेक रंगों में मानव-जीवन को व्याख्यायित किया है। इनके नवगीतों में जीवन्तता का आधार इनका स्वयं का एक विस्तृत सम्पर्क सूत्र है, जहाँ इन्होंने जीवन के विविध रंगों का साक्षात् अनुभव किया है। इनके नवगीतों का सर्वोपरि वैशिष्ट्य यथार्थवादी संचेतना के स्वरों की संलग्नता है।

कथ्य का माध्यम प्रकृति हो या आलम्बन के रुप में अन्य कोई बिम्ब हो उन्होंने सर्वत्र कथ्य को ठोस जमीन पर खड़ा कर के बात कही है। उनके विषय में ठीक ही कहा गया है कि 'इन्द्र' जी बिम्ब और प्रतीकों के साथ व्यक्ति मूलक संवेदना के धनी कवि है, जिसका अपना सौन्दर्य, अपना तेवर है। मानव-मन की अतल गहराइयों को, सामाजिक पीड़ा की अंतरंग अनुभूतियों और संबंधों की सहज प्रणयानुभूतियों को जिस कलात्मक के साथ जीवन की विसंगतियों एवं सर्वहारा वर्ग के संघर्षों से जोड़ते हुए, वह जिस प्रकार वर्ग-भेद, शोषण-व्यवस्था, धार्मिक कट्टरता, असहिष्णुता के खिलाफ अपने गीतों की विद्रोही आवाज उठाते हैं, वह अपने आप में अविस्मरणीय है। चिंतन के फलक पर 'इन्द्र' जी के गीतों का कैनवास इतना समृद्ध, विस्तृत एवं वहुआयामी है, जो गीतों के संसार को जीवन के विविध अनुभवों उसके परस्पर विरोधी स्वरों को अपनी साहित्यिक सृजनशीलता से समृद्ध तो करता ही है, साथ ही अपने दौर की गम्भीर एवं ईमानदार व्यक्ति की ओर भी ले जाता है। उसकी भावनाओं एवं संवेदनाओं के संघर्ष से एक नया कलात्मक सृजन जन्म लेता है।

पिछले अनेक वर्षों से पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित तथा नये संकलनों में सम्पादित नवगीतों का जो स्वरूप सामने आ रहा है, उसमें कहीं बहुत बड़े बदलाव का आभास नहीं होता। जो लोग नवगीत के उच्चस्थ शिखरों पर आरुढ़ हैं और नवगीत के संदर्भ में जिनकी विशिष्ट पहचान है, ऐसे रचनाकार अपनी नियत प्राचीरें तोड़ते नजर नहीं आ रही। जैसे

उनका सारा कथ्य, शिल्प और वर्ण एक-घेरे में सिमट कर रह गया है। लगता है जैसे कोई गाय पेट भर जाने पर निरर्थक मुँह चला-चलाकर जुगाली कर रही है। लगता है जैसे जो कुछ इन्हें कहना था, वह कह चुके हैं अब कुछ नया कहने के लिए जैसे शेष नहीं रह गया। ऐसे लोगों का रचना-क्रम पुनर्वाचन की नीरस प्रक्रिया को ही अग्रसर करता है, किन्तु देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' न थके हैं, न हारे, न चुक चुके हैं, न रीते हैं, उनमें अब भी सृजन की ताजगी है और कथ्य की नव्यता है। उनके नवगीतों में उल्लास भी है और दम-खम भी। गली के धुप अंधेरे से निकलकर उन्हें फिर किसी मोड़ पर रोशनी की तलाश है। नैराश्य के अन्धकार में भी उन्होंने कभी हारना स्वीकार नहीं किया। हर क्षण उन्होंने अपनी जीवन्तता का परिचय दिया है। 'दिन पाटलिपुत्र हुए' में उन्होंने कहा है कि-

''नीली भाषा के हर स्वर्णाक्षर में
गीतांजलियों के ज्वारित सागर में
यह तो कुछ तुम सुनते हो
एक कण्ठ विषपायी है
लयवन्ती सर्जना नहीं।''[8]

बीसवीं शताब्दी के सातवें और आठवें दशक में प्रयोगवाद के नाम पर जिस नयी कविता ने अभिजात वर्गीय साहित्यिक माहौल का निर्माण किया था और जिन्होंने अपने अस्तित्व को टिकाने के लिए कविता की रागात्मक धारा का निषेध किया था, समय के जनाग्रही स्वरों ने उसे बहुत जल्दी ही आठ-फुट जमीन में नींचे गाड़ दिया। जहाँ की सुगबुगाहट कुछ अभिजात लोगों को ही यांत्रिकी उपकरणों के द्वारा होती रही है। वजह बतायी गयी थी कि रागात्मक छन्द, में तथ्यों को यथावत व्याख्यायित करने में छन्द-विधान का व्यवधान सामने आता है अर्थात् छान्दस गीतों की स्वरूप सज्जा में ही कवि जैसे सीमांकित हो जाता है और स्वच्छंदता से अपनी बात नहीं कह पाता।

प्रयोगवादी तथा नयी कविता के मानधाताओं की ये स्थापनायें उनके अपने सोच के दायरे में तथा उनकी अपनी अस्मिता को सुरक्षित रखने के व्यामोह में उचित रही होगी। किंतु उनके गीत के ऊपर इस तरह के सार्वजनिक आक्षेप समय ने धुरी से नकार कर रख दिये। नवगीत के प्रयोगवादी बदलते वज़ूद ने इन सारे आरोपों को ध्वस्त कर दिया और साहित्य के वाचक को और समीक्षकं को यह स्वीकारने के लिए वाध्य कर दिया के जो कुछ नवगीत में है, उससे ज्यादा नयी कविता में कहीं नहीं है।

नयी कविता के समर्थन में कहा जाता है कि शब्दों में अर्थ विस्फोट की संभावना नयी कविता ने पैदा की है। गुंफित और गंभीर सोच की सम्पूर्ण सार्थक अभिव्यक्ति नयी कविता में है, साथ में यह भी कहा जाता है कि नयी कविता वैश्विक सोच से संलग्न सम्पूर्ण मानव-जाति के मनोभावों का विश्लेषण करती है, लेकिन ये विशेषताएँ तो नवगीत में पहले से मौजूद थी। निराला स्वयं समय के नये विहग को नयी गति, नयी उड़ान और नये आकाश देने के पक्षधर थे। प्रसाद जी इस पार से उस पार जाने की उत्कंठायें जगा रहे थे, महादेवी ने भी कूलहीन काव्य-प्रवाहिनी का समर्थन किया है। इन गीतों से बढ़कर जब हम नये गीतों के दायरे में पदार्पित होते हैं, तो नवगीतकार देवेन्द्र इन्द्र कहता हैं-

"दूध धूले पंखों से, नापों तुम आसमान
हम जलती धरती पर चल देंगे पाँव-पाँव।"

यहाँ उन्होंने स्पष्ट किया है कि कल्पना जीवी उड़ानों की अपेक्षा जमीन पर खड़े होकर बात कहना कहीं अधिक उचित है। देवेन्द्र शर्मा किसी निश्चित अनुबंधनों के हामी नहीं रहे। उन्होंने अपनी सारी प्राचीरों को ध्वस्त करते हुए खुले आकाश में उड़ान भरने का उद्घोष किया है। वह कहते हैं-

"शब्दों के तकिये पर हौले से सिर धरकर
नापें हम
अर्थों के सूने आकाश को
धूप खिले तालों में मछली-से दिन फिसले
और और
फैलाएँ कुहरे के पाश को।"[9]

उन्होंने वैश्विक सोच के धरातल पर भी सम्पूर्ण मानवीय संस्कृति के परिपेक्ष में अपनी बात कहने का यत्न किया है। विश्व की बौद्धिक संलग्नता और आतंकवादी अव्यवस्था के माहौल में वह अपनी बात बड़ी धारदार शब्दावली में व्यक्त करते हैं-

"आसमान तक उठा धुआँ
राख हुआ रेशमी शहर।
होठों पर
नफरत के बोल
आँखों में

उबल रहा खून
दौड़ रहे सड़कों पर पाँव-पाँव
हाथो में लेकर कानून
कातिल पीछे लगे हुए
चौराहे पर न तू ठहर।
भड़क रही
मजहब की आग
घूम रहे
खंजर, तलवार
लपटों में जल रही, किताब
सुलग रहे गलियाँ, बाजार
कल तक सब ठीक-ठाक था
आज कौन ढा गया कहर।
लावे की
नदी उठी खौल
दहक रहे
नावों के पाल
अँधियारा करता है कत्ल
उजियारा पूछ रहा हाल
लाशों के ढेर पड़े हैं।
घर लगते भुतहा खण्डहर।''[10]

कवि का कथ्य चिरंतन सत्य की सारस गाथा बनकर सामने आया है। उनको सोच वसुधैव-कुटुम्बकम के विस्तृत पटल पर अंकित हुआ है। उन्होंने स्पष्ट कहा है कि-

''घाटियों, पर्वत, वनान्तर पंथ गोचर प्रान्त पर
महकता दिनभर कनेरी घूर का जो आवरण।
अब बबूलों की सुलगती झाड़ियों से उलझकर
कर रहा सीमान्त के विस्तार धुँधलकों का वरण।''[11]

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' के साहित्य का मानवीय संवेदनाओं के विस्तृत वैचारिक पटल पर प्रथम बार विचार किया जा रहा है। इस शोध प्रबन्ध का यह

<u>संदर्भ सूची</u>

1. देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' 'पथरीले शोर में' पृ. 9
2. वही 'कुहरे की प्रत्यंचा' - पृ. 15
3. वही 'आँखों में रेत प्यास' - पृ. 17
4. वही 'चुप्पियों की पैंजनी' - पृ. 60
5. वही वही पृ. 74
6. कांति लोधी साठोत्तरी हिन्दी-गीत-काव्य पृ. 450
7. देवेन्द्र शर्मा इन्द्र चुप्पियों की पैंजनी की भूमिका से लिया गया पृ. 15
8. वही 'दिन पाटलिपुत्र हुए' पृ. 28
9. वही 'चुप्पियों की पैंजनी' पृ. 71
10. वही वही पृ. 79
11. मैं साक्षी हूँ प्रबन्ध काव्य से ——— Page No - ?